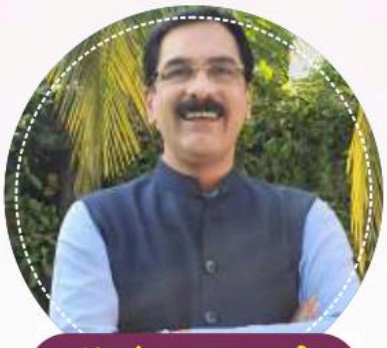


डॉ. संजय मालपाणी
राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष, गीता परिवार

आत्मन्येवात्मना तुष्टः

जीवन की आपाधापी में कई बार ऐसे प्रसंग आते हैं कि हमारा तनाव और रक्तचाप (Blood Pressure) बढ़ जाता है। जब तनाव में कोई निर्णय हम करते हैं तो वह निर्णय गलत होने की संभावना भी अधिक हो जाती है। क्रोध में, निराशा में, दुःख में अथवा तनाव में हमारा मन विचलित रहता है। मन और मस्तिष्क जब एक दिशा में न हो तो शब्द भी संयमित नही होते। ऐसी स्थिति में पराजय की संभावना निश्चित ही बढ़ जाती है।

कुरुक्षेत्र के मैदान पर महावीर अर्जुन की स्थिति कुछ ऐसी ही थी। अपनों को युद्धभूमि में सम्मुख देखकर होने वाले प्रचण्ड नरसंहार का भविष्य उन्हें स्पष्ट दिख रहा था, इससे अर्जुन चिन्ताक्रान्त थे।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते। न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥

उपरोक्त दो श्लोकों में अर्जुन अपनी हतप्रद अवस्था स्वयं विदित करते हैं। अर्जुन के सभी गात्र शिथिल हो चुके हैं, मुख शुष्क हो चुका है, शरीर गलितगात्र हो चुका है, गाण्डीव धनुष हाथ से गिर रहा है, शरीर में दाह का अनुभव हो रहा है, कुछ भी करने से शरीर मना कर रहा है, मन भ्रमित हो चुका है। यह सभी लक्षण यह दर्शाते है कि अर्जुन निराश हो चुके हैं। हम भी अनेक बार ऐसी अवस्था के शिकार होते हैं और शिकार करने वाला हमारा ही अपना मन होता है। ऐसी स्थिति में अर्जुन लड़ता तो निश्चित ही पराजित होता। केवल श्रीकृष्ण की शरणागति के पश्चात् प्राप्त गीतोपदेश के कारण अर्जुन विजय को प्राप्त हुए। हम भी ऐसी अवस्था में गीता की शरण में जाकर हमारे ही मन को ठीक करें तो अनायास उस नकारात्मकता पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे ही अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ होने का जो मार्ग बताया है वह हमारे लिए अत्यन्त उपयुक्त है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते समय आरंभ में ही भगवान ने कहा -

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

अर्थात् जो व्यक्ति कामनाओं से मुक्त होकर स्वयं से स्वयं संतुष्ट रहना सीख लेता है वह स्थितप्रज्ञ होता है। हम अपने सुख की खोज बाहर करते हैं। परिस्थिति पर तथा दूसरों पर हम अपने सुख को निर्भर रखते है। मुझे यह वस्तु प्राप्त हुयी तो मैं सुखी बनूँगा, उसने मेरे साथ ऐसा बर्ताव किया तो मैं आनंदित रहूँगा... ऐसी कामनाएँ सदैव मन में रखने से हमने अपने आप को दुःखी रहने की आदत लगा ली है। भगवान कहते हैं कि आप के आनंद का झरना अंदर ही है, न की बाहर! 'आत्मन्येवात्मना तुष्टः' यह एक संकल्पना हम अपने जीवन में लाते ही दुःखों का दूर जाना आरंभ होता हैं।

प्रातः सूर्योदय के साथ उठते ही भगवान का स्मरण हो, प्रकृति के प्रति धन्यवाद का भाव हो, मुख पर प्रसन्नता हो, योगासन-प्राणायाम- ध्यान हेतु समय निकालें, कुछ अच्छा सुनें और भक्तिमय पूजन करें, सात्त्विक आहार लें। ऐसा करने से हमारी चित्तवृत्तियाँ प्रसन्न रहती हैं। यह अभ्यास निरंतर कुछ दिन निग्रहपूर्वक करने से स्वयं से स्वयं संतुष्ट रहने की आदत लगने लगती है।

दिनभर के कार्य में भगवान के लिए ही कार्य कर रहे हैं यह भाव रखना, सभी से मैत्री का भाव बनाए रखना, किसी भी व्यक्ति पर या प्रसंग में क्रोधित नहीं होना, अपनी प्रतिक्रियाओं को संयमित रखना, भूल से भी किसी के भी प्रति नकारात्मक नहीं बोलना। इस प्रकार की छोटी-छोटी आदतें स्वयं में आए इसका अभ्यास करने से यह आनंद का झरना सदैव प्रवाहित रहता है।

गीता का अभ्यास करते-करते जीवन में गीता उतारने का प्रयास ही जीवन के कल्याण का एवं शाश्वत विजय का मार्ग हैं।

- डॉ. संजय मालपाणी

